



मलयाळम आदिवासी साहित्य: एक दृष्टि

ORIGINAL ARTICLE



Author

डॉ. प्रत्यूष पी.
पोस्ट डाक्टरल फेलो
हिंदी विभाग
कार्यवट्टम कैंपस
केरल विश्वविद्यालय
तिरुवनंतपुरम, केरल, भारत

शोध सार

भारतीय आदिवासी बरसों से दीकुओं के अधीन रहकर बिलख रहे हैं। अस्मिता और अस्तित्व की पुकार साहित्य के माध्यम से गूँजने लगी। अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में मलयाळम भाषा में उनकी कराह को मुख्यधारा तक पहुँचाने में विलंब हुआ। एक तरह से देखा जाए तो भारत में लिपिबद्ध भाषाओं के साहित्य में आदिवासियों की समस्याओं और आदिवासीयत को उकेरने की उपेक्षा हुई है। प्रकृति से जुड़ी आदिम संस्कृति की संतानों का संताप सवर्ण पूंजीपतियों और धर्मांतरण कराने वालों की क्रिया की प्रतिक्रिया है। जल – जंगल – ज़मीन के लिए किए जाने वाले संघर्ष बरसों पुराने हैं। मलयाळम में लिखी गई प्रारंभिक गैर-आदिवासी रचनाओं में आदिवासी जीवन की झलक नाममात्र की है। आदिवासी साहित्यकारों में नारायण जी से प्रारंभ होने वाली साहित्यकारों की गाथा में आदिवासियों की भाषा, संस्कृति, समस्याएँ, अस्मिता और अस्तित्व आदि के विविध पक्ष अब जंगल की तरह घने दिखाई देने लगे हैं।

मुख्य शब्द

मलयाळम, आदिवासी साहित्य, आदिवासीयत, साहित्य, आदिवासी कहानी, आदिवासी आत्मकथा.

आदिवासी साहित्य आज एक सार्वभौमिक साहित्यिक आंदोलन है। यह साहित्यिक धारा प्रत्येक देश की प्राचीन जनजातियों के स्वरूप और अस्तित्व से संबंधित खोजों का परिणाम है। प्रत्येक देश के आदिवासी साहित्य में कुछ स्थानीय आवरण, स्वभाव और विशिष्टताएँ हैं, लेकिन कुछ सामान्य सूत्र उन्हें जोड़ते हुए दिखाई देते हैं। इस साहित्य में लेखन का सौंदर्यशास्त्र महत्वपूर्ण है। सौंदर्यशास्त्र कलास्वादन की दार्शनिक व्याख्या है। आदिवासी सौंदर्यशास्त्र की अवधारणाएँ पश्चिमी और पौरस्त्य सौंदर्यशास्त्र की अवधारणाओं से अलग हैं। आदिवासी और आदिवासियों की अभिव्यक्तियाँ अभिजात्य मुख्यधारा की सौंदर्य-संबंधी अवधारणाओं से भिन्न थीं। मलयाळम साहित्य में आदिवासियों की कलात्मक भावनाओं, सौंदर्यशास्त्र, अस्मिता एवं अस्तित्व का गहन अध्ययन हाल ही में शुरू हुआ है। दलितों के समान आदिवासियों को भी साम्राज्यवादी शक्तियों एवं सामंतवादी दकियानूसों द्वारा पैरों तले रौंदे जाने के कारण मलयाळम साहित्यकार आदिवासी समस्याओं को दलित साहित्य के दायरे में मापते रहे हैं। आदिवासी साहित्य, संस्कृति एवं समस्याएँ वैश्विक स्तर पर चर्चित वैश्विक विषय हैं, जबकि दलित समस्या एवं साहित्य भारत तक सीमित रहे हैं। एशियाई उपमहाद्वीप में विशेष रूप से देखी जाने वाली जाति-व्यवस्था का प्रभाव भारत में बहुस्तरीय है, लेकिन कई मायनों में इसे भारत के पड़ोसी देशों में भी देखा जा सकता है।

सदियों से नृशंस व्यवहार की आँच में तपते आदिवासियों का प्रतिशोध तीक्ष्ण और प्रखर होगा। आदिवासियों को साहित्य अतीत के रक्तपातपूर्ण अनुभवजगत का अभिव्यक्तीकरण है। वह इतिहास की खंदकों और वर्तमान को उलटा लटकाकर उस पर मुकदमा चलाता है। आदिवासी जानते हैं कि उनके पूर्वज भारत के प्रथम कवि, दार्शनिक, चित्रकार, वैद्य और वैज्ञानिक थे। अपने पुरखों को गुलामी की जंजीरों में जकड़कर प्रताड़ित करने वाले, बेहाल एवं मायूस भरी आँखों द्वारा ख़्वाब देखने पर हीरे

की सुई चुबाने वालों से पुर्जोर सवाल कर रहे हैं। केरल में आदिवासियों के प्रति मुख्यधारा की मान्यता रुग्ण थी, इसलिए उन्हें मानव का दर्जा नहीं दिया गया। मुख्यधारा के अभिजात्य वर्ग ने उन्हें 'जंगली' और 'असभ्य' जैसे उपनामों से संबोधित किया गया था।

केरल के आदिवासी समृद्ध लोक-साहित्य अथवा मौखिक साहित्य के भंडार हैं। दुनिया भर के आदिवासी अपने मौखिक साहित्य को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित करते हुए संरक्षित करते आए हैं लेकिन किसी भी विख्यात साहित्येतिहासिक ग्रंथों में मौखिक साहित्य का उल्लेख तक नहीं मिला। साहित्य को – प्राकृत, लोक और शास्त्रीय-वर्गीकृत करते समय आदिवासियों के साहित्य को प्राकृत की श्रेणी में मापा जाता है। केरल के आदिवासियों के लोक-गीत एवं लोक-कथाओं को पर्याप्त रूप से साहित्य के परिप्रेक्ष्य में संकलित नहीं किया गया है। आदिवासियों के लोक-साहित्य के संबंध में सी.के.जानू का कथन विचारणीय है "जनजातीय साहित्य, प्रकृति के साथ अपने गहरे संबंध और सांस्कृतिक बारीकियों की रक्षा करने की प्रवृत्ति के बावजूद, जनजातीय समाज, भाषा और मौखिक परंपरा जैसे तत्वों के अस्तित्व के बावजूद, बड़े पैमाने पर अपरिभाषित और अनन्वेषित बना हुआ है। "ओराचर" शब्द जनजातीय समुदायों में मौखिक परंपरा के साहित्य को इंगित करता है, जो इस तथ्य का सुझाव देता है कि समकालीन लिखित साहित्य उनकी समृद्ध मौखिक परंपराओं का विस्तार है। ओराचर की अवधारणा को सबसे पहले युगांडा के जनजातीय लेखक पियो जिरीमु ने प्रस्तुत किया था और इसे विश्व भर के जनजातीय लेखकों द्वारा अपनाया गया है। यह अवधारणा जनजातीय संस्कृतियों के भीतर मौखिक और लिखित अभिव्यक्तियों के बीच निरंतरता को रेखांकित करती है और इस प्रकार साहित्यिक परंपराओं को आकार देने में कहानी सुनाने और मौखिक इतिहास के आंतरिक मूल्य को स्वीकार करती है। जानू की आत्मकथा भी "ओराचर" का एक रूप है, इस अर्थ में कि यह लेखक भास्करन द्वारा रिकॉर्ड की गई और लिखी गई एक कथा थी।¹ अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को सजीव एवं बरकरार रखने का साहित्यिक संपदा व चिरंतन ज्ञान प्रत्येक आदिवासी समुदायों में विद्यमान है। लोक-साहित्य में मंत्र-तंत्र के साथ-ही-साथ जंगली जड़ी-बुटियों, प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र, पारिस्थितिक गतिविधियों तथा पेड़-पौधों समेत प्राकृतिक संपदा – जैसे जल-जंगल-ज़मीन एवं जानवरों – से संबंधित अनुमूलनीय ज्ञान की विविध श्रृंखला में वे अग्रणी हैं।

समसामयिक परिप्रेक्ष्य में आदिवासियों के साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में किए जा रहे शोध-कार्य में शोधकर्ताओं के रूप में आदिवासियों की भूमिका अभूतपूर्व है इसलिए आगामी समय में लोक-साहित्य का संग्रह संभाव्य होने का तवक्को है। मलयाळम के "मुख्यधारा" साहित्य में आदिवासी जीवन को पर्याप्त रूप से चित्रित नहीं किया गया है। मलयाळम साहित्य और फिल्मों ने आदिवासियों के प्रति जनमानस के पटल में अत्यंत विकृत और कृत्रिम धारणाएँ निर्मित की हैं। फिल्मों में आदिवासियों को प्राकृत तथा आधुनिक दुनिया से नवाकिफ लोगों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आदिवासियों को चित्रित करते समय शौचालय से पानी पीना, टीवी में दिखे जानवरों को शस्त्रों से मारना, बिस्तर का उपयोग न जानते हुए उस पर चढ़ना और कूदना, पत्तों से लथपथ आभूषण पहनकर कैबरे जैसा नृत्य करना – ये सभी घिसे-पिटे रूढ़-चित्रण हैं।

मलयाळम में भी कुछ दुर्लभ कृतियाँ हैं, जो आदिवासियों की स्वाधीनता, पुनर्जागरण और तरक्की के मायने को समझते हुए प्रगतिशील साहित्यिक अवधारणाओं के साथ लिखी गई हैं। इन गैर-आदिवासी रचनाओं में आदिवासियों के प्रति चिंतन सीमित है, क्योंकि गैर-आदिवासी साहित्यकार आदिवासी भाषा, समाज, संस्कृति, साहित्य, अचार-विचार इत्यादि से परिचित नहीं हैं। मलयाळम में आदिवासी साहित्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है आदिवासी और गैर-आदिवासी। पहला, गैर-आदिवासियों द्वारा आदिवासी जीवन के चित्रण से संबंधित है। इन रचनाओं में आदिवासी पात्रों का चित्रण करके उनके जीवन को विषय बनाने के अलावा खास विशेषता नहीं हैं। इन रचनाओं में आदिवासियों की भाषा, संस्कृति, मिथक और रीति-रिवाजों की झलक तक नहीं मिलती। गैर-आदिवासी रचनाकारों की एक अन्य श्रेणी भी है, जिसमें आदिवासी जीवन, पहचान, विश्व-बोध, विरासत और भाषा का चित्रण तथा महिमामंडन करने वाली रचनाएँ लिखी गई हैं। ऐसी रचनाएँ सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से उत्कृष्ट हो सकती हैं। दूसरा वर्ग उन आदिवासी रचनाकारों का है, जो आदिवासी साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय हैं और अपने जीवन, पहचान, संस्कृति, विरासत तथा अनुभवों को स्वयं अभिव्यक्त करते हैं।

गैर-आदिवासियों द्वारा रचित उपरोक्त दोनों प्रकार की कृतियों के अनेक उदाहरण मलयाळम साहित्य में मिलते हैं। मलयाळम की आदिवासी एवं गैर-आदिवासी रचनाओं का अवलोकन करते हुए नारायण जी का उक्त कथन विचारणीय है: "मैं आदिवासी लेखन के बारे में बोल सकता हूँ क्योंकि मैं एक आदिवासी हूँ। यह कहना कि गैर-आदिवासी लेखक आदिवासी जीवन के बारे में नहीं लिख सकते, इस मुद्दे पर एक निराशाजनक रूप से संकीर्ण दृष्टिकोण को थामे रखना होगा लेकिन यह निश्चित रूप से एक कठिन काम है। लड़ाई को देखना उसमें कूदने से अधिक रोमांचक होता है इससे आपकी नाक के नीचे

बाल नहीं झड़ते! चीजें नाटकीय रूप से बदल जाती हैं जब चोटें आप पर पड़ने लगती हैं। यदि आपको निष्क्रिय दर्शक की सीमाओं को पार करना है, तो आपको आदिवासी की भाषा सीखनी होगी और उनकी जटिल संस्कृतियों की गहराइयों में उतरना होगा। आपको उनके बारे में उतना ही जानना होगा जितना एक भीतर के व्यक्ति को। आपके पास समर्पण, धैर्य और शोध की एकाग्रचित्तता होनी चाहिए। मलयालम में ऐसे कितने लेखक मिल सकते हैं? मुश्किल से कोई। लेकिन कई गैर-आदिवासी लेखक सोचते हैं कि आदिवासी के बारे में लिखना बच्चों का खेल है। कुछ विदेशी नाम गिरा दें, पहाड़ियों, जंगलों और वन्य जीवन के साथ सही “माहौल” बना दें, और आदिवासी मिश्रण परोसने के लिए तैयार है! एक आदिवासी लेखक के रूप में मलयालम में लिखना मेरी व्यक्तिगत समस्या है। जैसा कि आप जानते हैं, मलयाळम मेरे लिए केवल एक दूसरी भाषा है। जिस भाषा में मैं घर पर बोलता हूँ, उसमें लिखने और प्रकाशित करने की शर्तें अब मौजूद नहीं हैं।²

केरलीय आदिवासियों के लिए अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा ग्रहण करना संभव हुआ है इसलिए प्रारंभिक लिखित पद्य और गद्य-साहित्य में मूल आदिवासी साहित्यकारों की स्वानुभूति की अंगूठा-छाप नहीं मिलती। साहित्यिक सौन्दर्यशास्त्र से अभिज्ञ पंडितों के हस्तक्षेप के कारण अमूमन प्रारंभिक मुख्यधारा काव्य-जगत में सामान्य जन की उपस्थिति प्रायः दिखाई नहीं देती लेकिन आधुनिक और उत्तर-आधुनिक मलयालम साहित्यिक सृजन में उत्पीड़ित लोगों की अनुगूँज सुनाई देती है। इस दौर में स्त्री, दलित और आदिवासी समेत अभिशप्त दमित लोगों की अस्मिता-मूलक साहित्यिक अभिव्यक्तियों ने निम्न तबकों को उद्वेलित किया है। मुख्यधारा के साहित्यिक जगत में प्रकाशित सृजनात्मक आदिवासी रचनाकारों में अशोकन मरयूर (मुतुवान), सुकुमारन चालिगद्ध (रावुळ), धन्य वेंडच्चेरी (माविला), शिवलिंगन.पी (इरुळ), अजयन एम.जी. (मुळ्ळुकुरुम), बिंदु दामोदरन (पणियन), दामोदरन पणियूराळिल (ऊराळी), लयेष् (पणियन), प्रकाश.के.चेन्तळम (माविला), रश्मी सतीष् (पणियन), विबु निलाम्बूर (काट्टुनायक), सिन्धु कालिचिन्कीर (बेट्टुकुरुम), अंबिका प्रतीष् (माविला), गागपणियूराळिल (ऊराळी), मनोज (उळ्ळाड), राजेंद्रन (मुतुवान), सुनीष् सी.वी. (माविला), सरोजिनी नारायणन पाणत्तूर (मलवेडुवा), उषा एस. (माविला), सीना तच्चंडाड (माविला), बाबु एम. (माविला), अर्चना (कुरिच्या) नामी हैं। पूर्वोक्त कवियों द्वारा रचित समस्त कविताएँ स्व-गोत्र भाषाओं में हैं, किन्तु उन भाषाओं की स्वतंत्र लिपी न होने के कारण मलयाळम लिपि का प्रयोग किया गया है। अशोकन मरयूर, सुकुमारन चालिगद्धा और धन्या वेंडच्चेरी अपनी-अपनी मातृभाषाओं के साथ-साथ मलयालम में भी लिखते हैं।

सुकुमारन चालिगद्धा अपनी रचनाओं को रावुल भाषा में लिखती हैं। मलयालम में समानार्थी शब्द न होने के कारण रावुळ भाषा में रचित कविताओं का मलयालम में अनुवाद करना मशक्कत का काम है। माविलान समुदाय की भाषा ‘माविला’ काल के रथचक्र में पराया होता जा रहा है। इस भाषा की प्रख्यात कवयित्री धन्य वेंडच्चेरी हैं। धन्य वेंडच्चेरी द्वारा माविला भाषा में रचित छोटी कविता ‘क्राच्चल’ इस प्रकार है “एन्नोन्जी चाप्पे/ काट्टु कौंडक् एन्नोन्जी मण्ण/ परिच्चळ कौंडक् एन्नन् .. / काट्टळ पेरिच्चळ चानिक् पणिये/ पेरिच्चळ पालक्केगे बेढा ”³ अर्थात् मेरा घर/ हवा ने उड़ा लिया/ मेरी ज़मीन/ बारिश ले गया/ और मुझे/ तेज़ हवा और बारिश/ क्यों कहते हो/ अपने बच्चों को भी नहीं चाहिए। अट्टप्पाडी के कवि शिवलिंगन ‘इरुळ’ भाषा में कविता लिखते हैं। वे अपनी कविताओं के माध्यम से स्व-गोत्र की अस्मिता और अस्तित्व संबंधी बाधाओं को भावपूर्ण भाषा में अभिव्यक्त करते हैं। ‘वेळिये’ (बाहर) नामक कविता आदिवासी कविताओं में ख्यात है। इरुळ भाषा में कविताएँ रचने वाले कवियों में मणिकंठन अट्टप्पाडी उल्लेखनीय हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता ‘विल्ळमीन्क’ (तारें) समसामयिक अमानवीय कुकृत्यों को उकेरती है।

मलयालम आदिवासी कहानियों के सूक्ष्म अध्ययन से एक मुट्ठी-भर बहुमूल्य कहानियाँ प्राप्त होती हैं। पी.सी. कुट्टिकृष्णन कृत ‘नीलमला’ आदिवासियों को केंद्र में रखकर रची गई कहानी है। प्रस्तुत कहानी में नीलगिरी के घने जंगलों में बेहोश हालत में पड़े एक युवक को बचाने वाले तोतवा आदिवासी (‘तोतवा’ आदिवासी समाज है) की सहृदयता और संवेदनशीलता का चित्रण किया गया है। ‘वित्तुम मण्णुम’ कहानी में पी.सी. कुट्टिकृष्णन ने तमिलनाडु के जंगलों में रहने वाले ‘बटुका’ कबीलों के संघर्षपूर्ण जिन्दगी को बारीकी से मापा गया है। आलोच्य कहानी जल, जंगल, ज़मीन समेत आदिवासियता को उजाड़ दिए जाने वाले दीकूओं तथा सामुदायिक व्यवस्था में जीवन बिताने वाली आदिवासी गृहिणी की मनोव्यथा का अभिव्यक्तीकरण हुआ है। बटुका स्त्री को विवाह के छह महीने के भीतर स्वयं को संतानोत्पत्ति के योग्य सिद्ध करना पड़ता है, अन्यथा उसे समाज से निष्कासित कर दिया जाता है। इस अधम्य पुश्तैनी प्रथा के विरुद्ध मुख्य पात्र कालियम्मा का संघर्ष पाठकों को अभिभूत करता है।

मलयालम के प्रथम आदिवासी साहित्यकार के रूप में विख्यात नारायण जी के कहानी-संग्रह ‘निस्सहायन्टे निलविली’ सहित उनकी समग्र साहित्यिक कृतियों में आदिवासियों के शोषण और अंतःसंघर्ष को खूनी स्याही से अंकित किया गया है। इसलिए नारायण का साहित्य अत्यंत प्रखर और प्रभावशाली है। कहानी ‘तेनवरिक्का’ में प्रकृति और आदिवासियों के बीच के

नाभि-नाल संबंध का वर्णन किया गया है। आदिवासी की मान्यता में पारंपरिक एवं प्राकृतिक संपत्ता बेशकीमती है। कटहल के पेड़ के प्रति पात्र अय्यप्पन का लगाव भी उसे पुश्तैनी रूप से प्राप्त हुआ है। अड़ियल बेटे ने अपनी गरज में पिता के लगाव को नज़रअंदाज़ करते हुए कटहल के पेड़ को कटवा देता है, जिससे वर्तमान पीढ़ी की लिप्सा, गरीबी एवं प्रकृति से टूटते संबंधों का गहन विश्लेषण किया गया है।

1941 में के.एम.पणिकर द्वारा रचित उपन्यास 'केरल सिंह' में पहली बार आदिवासियों का चित्रण हुआ। इस उपन्यास में अंग्रेजों के विरुद्ध पयशशी (Pazhashi Raja) के योद्धाओं के संग रहे कुरिच्यों (कुरिच्या समुदाय) को वीरों के रूप में चित्रित किया गया है। किंतु कुरिच्या समुदाय की भाषा, जीवन, मिथक और रीति-रिवाज इस उपन्यास के केंद्रीय विषय नहीं हैं। मलयाळम साहित्य की सौन्दर्य-संकल्पनाओं के दायरे में रहकर आदिवासी जीवन के जद्दोजहद को अभिव्यक्त करने वाले उपन्यासों में टी.सी.जॉनी के 'उराट्टी' (1977), 'तेक्क' (1977) और 'नेल्ल' (1985); मलयाट्टूर की पोन्नी (1967); पी वत्सला की नेल्ल (1972), अग्नेयम (1974), चावेर (1985); वी.ए.तम्बी की पंजमी (1981); के.जे.बेबी की मावेलिमंट्ट (1991), नाट्टुगदिका (1984); कुन्नुत्तूर गोपालकृष्णन की कुझियन (2003); जोस पाञ्जूकारन की अरिवाल जीवन (2010) और करुत्ता पुलिकळ जनिकुन्नुत् (2012) नामवर हैं। उपरोक्त उपन्यास अंतहीन उत्पीड़न और अवसाद के शिकार बने कबीलों की दर्दनाक दास्तान का दस्तावेज़ हैं। 'उराट्टी' में आदिवासी भाषा को अपनाया है।

इनमें 'नेल्ल', 'मावेलिमंट्ट', 'करुत्ता पुलिकळ जनिकुन्नुत्' जैसे उपन्यास विशिष्ट अध्ययन के योग्य हैं। आदिवासी परिवेश को दर्शाने वाले कई उपन्यासों की रचना पी.वत्सला ने की है, लेकिन 'नेल्ल' में आदिवासी जीवन का समग्र चित्रण है। वयनाड के तिरुनेल्ली क्षेत्र की पृष्ठभूमि पर दकियानूसी कुरीतियों को भोकते हुए साधनविहीन जिन्दगी में जूझते आदिवासियों का अभिलेखन है 'नेल्ल'। 'जॉर्ज ओणक्कूर' का मानना है कि, "इतिवृत्त-घटना, पात्र-सृष्टि और संभाषण शैली में कान्ति बनाई रखने में वत्सला सक्षम रहे। हमारे साहित्यजगत के लिए अनभिज्ञ रहे आदिम जिन्दगी के खुलासा ने नेल्ल को अनोखी चमक प्रदान करता है।"⁴ जोस पाञ्जूकारन का 'करुत्ता पुलिकळ जनिकुन्नुत्' उपन्यास साहित्यिक सौन्दर्य में अभिजात लावण्य-बोध को ग्रहण करते हुए आदिवासियों की वर्तमान-स्थिति का संवेदनशील अवलोकन करता है। इस उपन्यास में अपनी जमीन, जीवन और अस्तित्व के लिए संघर्षरत आदिवासी कबीलों की विसंगतियों को उकेरा गया है।

बहुमत ने आदिवासियों द्वारा रचित साहित्यिक कृति को ही आदिवासी साहित्य का दर्जा दिया है। जिन्दगी के भोगे हुए यथार्थ, अपनी भाषा, संस्कृति और आचार-व्यवहार में खुल-मिलकर जीने वालों के मानदंड के अनुरूप मुख्यधारा में चर्चा किए जाने वाला केरल का पहला आदिवासी साहित्यकार नारायन है। कोच्चरेत्ती इस अर्थ में मालयाळम की प्रथम आदिवासी उपन्यास है। नारायन ताल्लुक रखने वाले 'मलयरय' समुदाय की कहानी है 'कोच्चरेत्ती'। गोत्र विभाग के त्रासद हकीकतों को अभिव्यक्त करते समय नारायन द्वारा उकेरे मनुष्य और प्रकृति भाषा समेत व्यवहारों में अंतर्लीन है। आधुनिक सभ्य समाज में आदिवासी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता से संबंधित समस्याओं का सामना कर रहे हैं। उन अनुभवों को मरते दम तक नारायन जी ने साहित्यिक ढांचा दिया है। कोच्चरेत्ती का संक्षेप है: "यह उपन्यास आदिवासियों की भूमि और उसके स्वामित्व के बारे में बदलती धारणाओं का मानचित्रण करता है। यह हमें एक आंतरिक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जैसा कि नारायन पश्चिमी घाट की तलहटी में रहने वाले लोगों के जीवन में होने वाले परिवर्तनों का वर्णन करते हैं, जब वे आधुनिकता के हितों के साथ समझौता करते हैं। यह एक ऐसा विवरण है जो भूमि के कब्जे और बेदखली, उन लोगों की मासूमियत का पता लगाता है, जिनके पास यह धारणा भी नहीं थी कि भूमि 'संपत्ति' है और कि उन्हें इससे अलग किया जा सकता है। आदिवासियों, पहले निवासियों, के लिए भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार प्राप्त करने का कोई सवाल ही नहीं था। भूमि उनकी सामूहिक पहचान की भावना से अलग नहीं थी; वे इसके साथ एक थे और सभी संस्कारों में इस मिलन का जश्न मनाते थे।"⁵

कोच्चरेत्ती महज मलयरय समुदाय की गाथा नहीं, बल्कि आधुनिकता की बाढ़ में तहस-नहस हो गई वैश्विक आदिवासियों की आदिवासियत का प्रलेखित रूप है। कोच्चरेत्ती मलयाळम में उल्लिखित आदिवासियों का वृहत्कथासरित्सागर है। 'नारायन' वैश्विक स्तर पर प्रख्यात संजीदा साहित्यकार हैं – एक ऐसा साहित्यकार जिसने पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त ज्ञान, पराए और अपने अनुभवों का सामंजस्य किया है।

बरसों से आदिवासियों के बीच अनुष्ठान के रूप में चले आ रहे नाटक बहुसंख्यक हैं। इनमें प्रतिषेध, प्रतिरोध और प्रतिशोध की धधकते खून को देख सकते हैं। लोक-मानस की धड़कन को आदिवासी समुदायों के लोक-नाट्य में देखा जा सकता है। कई समुदायों में एक ही नाम के नाटक मिलने के बावजूद विचारधारा और प्रदर्शन शैली में अंतर होता है।

पणियर, काट्टुनायक्कर, तच्चनाडन मूप्पर, ऊराळी वगैरह समुदायों में प्रचलित पारंपरिक नाटकों में कोरत्तिनाटक ; तच्चनाडन मूप्पर का आयिरम्माल नाटक; कणिकार का वल्लिनाटक; कणिकार और कुरुम्बरो का हरिश्चन्द्र नाटक, इरुलर का चीरामलव-कुश नाटक, कोंगम-मलयर् का तेनेडुनाटक आदि शामिल हैं। आदिवासी नाटकों की शैली एवं शिल्प मुख्यधारा के शास्त्रीय-व्यावसायिक नाटकों से पृथक् एवं विशिष्ट है। इनकी एकरूपता केरल की ग्रामीण नाट्य-परंपराओं से है। पात्रों और दर्शकों के बीच का घनिष्ठ मिलन तथा वैचारिक संवाद आदिवासी नाटकों की विशेष पहचान है। आदिवासियों के पारंपरिक वंशीय नृत्यरूपों और अनुष्ठानकलाओं (जैसे 'गदिक') में नाट्य-तत्त्व प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। अड़ियरों की पूजा गदिक से प्रभावित, के.जे.बेबी द्वारा रचित और मंचित नुक्कड़ नाटक "नाट्टुगदिक" ने व्यावहारिक रूप से वायनाड के आदिवासियों की भुखमरी, बेरोजगारी, गरीबी, कुपोषण, विस्थापन जैसे वर्तमान समस्याओं को तीव्रता से प्रस्तुत किया है। इस नाटक के अधिकांश कलाकार स्वयं आदिवासी थे।

पणिय समुदाय से संबंध रखने वाले नाटककार के.के.विजयन नाट्यकला के माध्यम से अपने लोगों को प्रबुद्ध बनाने का संकल्प लेकर निकले आन्दोलनकर्ता हैं। नाटककार और निर्देशक के दायित्व को निभाते हुए विजय ने करीब नौ नाटकों का सफल प्रस्तुतीकरण किया, परन्तु मलयाळम के नाट्य-इतिहास में उनकी गणना नहीं की गई है। उनके सभी नाटक सोद्देश्यपूर्ण हैं। नाट्य-आन्दोलन के माध्यम से विजय अपने समुदाय के लिए सार्वजनिक-मंच बनाना, सर्वजनसत्तात्मक व्यवस्था पर प्रश्न उठाना, व्यवस्था की जुर्रत के विरुद्ध जागृत करना और समुदाय के कुकृत्यों व कुरीतियों को उजाड़ना चाहते थे। विजय के नाटकों में "इत्तिल्कणिकल" सबसे नामी है। कथातत्त्व है, दासप्रथा में कष्टदायक और मेहनतकश काम करवाकर आदिवासियों की ज़िन्दगी को धधकती भट्टी में डालकर नेस्तनाबूद कर दिया गया। विजय का ख्यात नाटक है "इल्लम पिज्यच्चवन"। यह नाटक अपने ही समुदाय से बाहर जाकर विवाह करने की सामाजिक प्रासंगिकता को दर्शाता है। विजय का मत है कि समुदाय के भीतर ही विवाह करने पर उन्नति नहीं होगी, और मिश्र-विवाह जाति-धर्म व्यवस्था को तख्तापलट देगा। "ईयां पाट्टकळ," "निमिषंगळक्ककम," "मोचनम अकले" आदि उनके अन्य नाटक हैं। चेतनयुक्त करने के लिए कितना भी प्रयास व प्रचार कर लें, फिर भी आदिवासी शोषण के राह पर चल पड़ते हैं। इसी अफसोसजन्य दास्तान पर जन्मा विजय का अंतिम नाटक है "मोचनम अकले"।

दलित-आदिवासी साहित्य में प्रसिद्ध विधा है 'आत्मकथा'। मलयाळम में गिनेचुने आदिवासी आत्मकथाएँ ही प्रकाशित हुई हैं, जिनमें प्रमुख हैं 'सी.के.जानुविंटे जीवितकथा' और 'मयिलम्म ओरु जीवित'। इन आत्मकथाओं को 'जीवनी' कहना मुनासिब होगा, क्योंकि प्लाच्चिमडा संघर्ष के क्रांतिकारी नेता मयिलम्मा ने अस्तित्व के लिए किए गए अपने संघर्ष का लेखन जोतिबायी परियाडत्तु के सहयोग से किया, तथा मुत्तंगा संघर्ष के संघर्षकर्ता सी.के.जानू ने अपनी आत्मकथा भास्करन के सहयोग से प्रकाशित की। उपर्युक्त रचनाएँ आदिवासियत के लिए आदिवासियों की अंतर्संघर्ष, विडंबना, विसंगति और विद्रूपताओं को बहुसंख्यक तक पहुँचाने का प्रयास करती हैं। पी.के.कालन के जीवन-गाथा पर आधारित जीवनी है 'पी.के.कालन आदिवासी जीवितत्तिन्टे समरमुख'।

अन्य भाषाओं में रचित आदिवासी साहित्यिक कृतियों में जिन तपते हुए जीवन-परिदृश्यों का चित्रण किया गया है, उन्हीं सच्चाइयों को अपने जीवन में जीकर दिखाने वाले लोग भी हैं। यही वास्तविकता मलयाळम की उन गिनी-चुनी आदिवासी साहित्यिक रचनाओं में हमसे पुकारती हैं। साहित्य के माध्यम से हल्ला मचाने के कारण वे मुख्यधारा के अभिजात्य वर्ग तक परिचित होने लगे। उन्हें पहचान मिलने लगी तथा अस्तित्व के लिए उठाई गई आवाजें बुलंद होने लगीं। संवैधानिक अधिकारों का सही क्रियान्वयन हो, तो भविष्य में आदिवासी समस्याओं का समाधान संभव है।

निष्कर्ष

आदिवासी साहित्य आज एक सार्वभौमिक साहित्यिक आंदोलन बन चुका है, जो विश्व भर की जनजातियों के अस्तित्व, अस्मिता और सांस्कृतिक विशिष्टताओं को अभिव्यक्त करता है। मलयाळम साहित्य में आदिवासी लेखन की यात्रा मौखिक परंपरा (Orature) से शुरू होकर लिखित साहित्य तक पहुँची है, जहाँ सी. के. जानू और नारायण जैसे लेखकों ने अपनी आत्मकथाओं और उपन्यासों के माध्यम से आदिवासी जीवन की वास्तविकताओं को मुख्यधारा तक पहुँचाया। आदिवासी सौंदर्यशास्त्र पश्चिमी और पौरस्त्य सौंदर्यशास्त्र से भिन्न है, क्योंकि यह प्रकृति, सामुदायिक पहचान और मौखिक परंपराओं पर केंद्रित है। मलयाळम साहित्य में आदिवासी लेखन को दो श्रेणियों में देखा जा सकता है गैर-आदिवासी लेखकों द्वारा रचित कृतियाँ, जो अक्सर बाहरी दृष्टिकोण से आदिवासी जीवन को चित्रित करती हैं, और आदिवासी लेखकों द्वारा रचित कृतियाँ, जो आंतरिक अनुभवों और यथार्थ को प्रतिबिंबित करती हैं। अशोकन मरयूर, सुकुमारन चालिगद्ध, धन्य वेंडच्चेरी, शिवलिंगन.पी जैसे आदिवासी कवियों

ने अपनी मातृभाषाओं (रावुळ, माविला, इरुल) में कविताएँ रचकर आदिवासी अस्मिता को साहित्यिक अभिव्यक्ति दी है।

आदिवासी साहित्य न केवल शोषण और विस्थापन की दर्दनाक गाथाएँ सुनाता है, बल्कि प्रतिरोध, प्रतिशोध और पुनर्जागरण की भावना को भी अभिव्यक्त करता है। के.के. विजयन जैसे नाटककारों ने नाट्य-आंदोलन के माध्यम से आदिवासी समुदाय को प्रबुद्ध बनाने और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने का कार्य किया। आत्मकथा विधा में सी.के.जानू और मयिलम्मा की रचनाएँ आदिवासी संघर्षों को दस्तावेज़ करती हैं, जो मौखिक परंपरा का विस्तार हैं। आदिवासी साहित्य की वैश्विक प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि यह केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि विश्व भर की जनजातियों के सामान्य अनुभवों जैसे ज़मीन का अधिकार, सांस्कृतिक अस्मिता का संकट, और आधुनिकता के साथ समझौता को प्रतिबिंबित करता है। मलयालम साहित्य में आदिवासी लेखन का विकास धीमा रहा है, लेकिन नारायन जैसे लेखकों की कृतियों ने इस धारा को मुख्यधारा की पहचान दिलाई है। भविष्य में आदिवासी साहित्य के विस्तार के लिए आवश्यक है कि आदिवासी लेखकों को अपनी भाषाओं और संस्कृतियों में लिखने के अधिक अवसर मिलें, और उनकी कृतियों का अनुवाद एवं प्रकाशन व्यापक स्तर पर हो, ताकि आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की आवाज़ें और अधिक बुलंद हो सकें।

सन्दर्भ सूची

1. Alex, Minu; Lakshmi, S. Geetha (2024) Introspecting on Adivasi Rights: A Critique of C. K. Janu's Autobiography Mother Forest: The Unfinished Story of C. K. Janu - Literary Voice An International peer Reviewed Journal of English Studies, 2(1), ISSN: 2583-8199 (Online), <https://literaryvoiceglobal.in/>, Accessed on 18/06/2026.
2. भाषापोषिणी (मलयालम पत्रिका), मार्च 2019, अंक-3।
3. Adivasi Identity in Malayalam Literature ("Watching a fight is more exciting than fighting – It's no skin off your nose!") – Interview with Narayan, Interviewer K M Sherrief – Scribd - <https://www.scribd.com/document/Narayan-Interview>, Accessed on 17/06/2026.
4. ओणक्कूर, जॉर्ज (1998) आधुनिक साहित्यचरित्रं प्रस्थानंगलिलूडे (एडी: के.एम. जॉर्ज) डी.सी.बुक्स, कोट्टयम।
5. Narayan (2012) Kocharethi : the araya woman (Introduction). Translated by Catherine Thankamma ; Oxford University Press, Delhi, ISBN : 9780198079880, archive.org, Accessed on 20/06/2026.

---==00==---